International Journal of Applied Research 2017; 3(1): 592-594

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2017; 3(1): 592-594
www.allresearchjournal.com
Received: 22-11-2016
Accepted: 25-12-2016

डॉ. रवीन्द्र कुमार दास
सहायक आचार्य, संस्कृत विभाग,
राजधानी महाविद्यालय,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली,
भारत।

Correspondence
डॉ. रवीन्द्र कुमार दास
सहायक आचार्य, संस्कृत विभाग,
राजधानी महाविद्यालय,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली,
भारत।

ब्रह्मावगति में ब्रह्म–पर्यायों की भूमिका

डॉ. रवीन्द्र कुमार दास

प्रस्तावना

उपनिषदीय दार्शनिकों का, अनिवार्यतः एक ही गंतव्य है – ब्रह्म। वह ''ब्रह्म'' जिसमें सारे भूत, सारी प्रणाली, सारे मूल्य, सारे विचार – संक्षिप्त में, कल्पनीय और अकल्पनीय सब कुछ जिसमें समाहित हैं, अन्तर्भूत हैं। समस्त उपनिषद् वाङ्मय का तात्पर्य उस ''ब्रह्म'' को जानने के प्रयास में है। आज, जबकि उपनिषद् – वाङ्मय, हमारे पास कुछ शब्द के रूप में उपस्थित है, उन शब्दों का अधिकतम अर्थ जानने का प्रयास किया जा रहा है, उन शब्दों से जो भी ''इंगित'' है, उन शब्दों का जो भी वाच्य है, उनके उद्देश्य का जो भी विस्तार है, उसे जानने का प्रयास किया जा रहा है। यह क्रम ब्रह्मसूत्र के प्रणेता आचार्य बादरायण से प्रारंभ होकर आज तक चलती आ रही है और संभवतः अभी इस क्रम को बहुत आगे तक जाना है।

दार्शनिक प्रक्रिया को परखने की यह भी एक रीति है – उस प्रक्रिया प्रवाह में उत्पन्न प्रश्नों को समझना। बल्कि, किसी भी अभिकथन की सार्थकता की सूचना ही, वे प्रश्न या वे बिन्दु देते हैं जिनसे प्रेरित होकर अभिकथनकर्ता अपने शब्द उच्चरित करता है। अन्यथा, अभिकथन की प्रयोज्यता ही धूमिल हो जाती है। इसे एक शब्द में ''प्रासंगिकता'' का नाम दिया जा सकता है। अस्तु।

अब एक बार उपनिषदीय दार्शनिक प्रक्रिया में आए प्रश्नों पर ध्यान केन्द्रित करते हैं। हालाँकि ''उपनिषद्'' अपने व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ में ''प्रश्नों का उत्तर'' ही है। तथापि, प्रश्नों की भाषिक संरचना भी अपने आप में महत्त्वपूर्ण है। पूरे उपनिषद् वाङ्मय में जिज्ञासा परक प्रश्न, संख्या में बहुत अधिक है किन्तु कुछ प्रश्नों को यहाँ रखा जाएगा, उन प्रश्नों को, जिनकी जिज्ञासा अपेक्षाकृत अधिक गंभीर तथा मूल तत्त्व से है। वे हैं –

1. किस तत्त्व को जान लेने पर यह सबकुछ जान लिया जाता है?[1]
2. जिसके द्वारा अश्रुत श्रुत हो जाता है, अमत मत हो जाता है और अविज्ञात सुविज्ञात हो जाता है। वह आदेश कैसा है?[2]
3. जगत् का कारणभूत कैसा है? हम किससे उत्पन्न हुए हैं? किसके द्वारा जीवित रहते हैं? किसमें अधिष्ठित हैं? जिसके द्वारा प्रेरित होकर सुख दुःख में संसार यात्रा का अनुवर्तन करते हैं?[3]
4. विज्ञाता को किसके द्वारा जाना जाए?[4]
5. इस लोक की क्या गति है?[5]
6. यह जो विज्ञानमय पुरुष है, जब सोया हुआ था, तब कहां था? और यह कहां से आया?[6]
7. वह पुरुष कहां है?[7]
8. खाए जाने पर भी अन्न क्यों नहीं क्षीण (नष्ट) होते हैं?[8]
9. आत्मा कौन है? यह ब्रह्म क्या है?[9]
10. ब्रह्म के विषय में बताएं?[10]

इन प्रश्नों पर विचार करने पर प्रतीत होता है कि उपनिषदीय जिज्ञासा उन मौलिक तत्त्वों की है, जिन्हें उत्पाद, प्रक्रिया या परिणाम का मूल कारण कहा जा सकता है। इन समस्याओं का समाधान ऋषियों ने बड़ी लम्बी और गंभीर छानबीनन के बाद प्राप्त किया।

इस प्रसंग में उल्लेखनीय है कि उपनिषदीय जिज्ञासा में प्राप्त निष्कर्ष सदैव अनन्तिम तथा निर्वैयक्तिक हैं। कभी किसी ऋषि ने, चाहे वे आचार्य हों या जिज्ञास्यमान शिष्य, समाधान को ''अपना'' नहीं कहा। वे सामान्यतः ऐसा कहते दिखते हैं – ''ब्रह्मवादी ऐसा कहते हैं'' ''ब्रह्मवादी ऐसा मानते हैं'' ''ब्राह्मणों का ऐसा कहना है'' आदि।[11]

उपर्युक्त प्रश्नों का उत्तर सामान्यतः ''ब्रह्म'' या ''आत्मा'' ही है। किन्तु इस तरह, शुष्क रीति से उत्तर दे देने से न तो वक्ता को ही संतोष होगा और जिज्ञासु प्रश्नकर्त्ता के लिए तो ''अमूर्त'' अवधारणा मात्र ही रह जायेगा। संभवतः इन्हीं बातों को ध्यान में रखकर समस्याओं का समाधान ''वाद संवाद'' या ''आध्यात्मिक पर्यवेक्षण'' द्वारा किया गया है। ऐसे प्रसंगों के बहुत सारे उदाहरण हैं। जिनमें बृहदारण्यक उपनिषद् से गार्ग्य–अजातशत्रु संवाद, मैत्रेयी याज्ञवल्क्य संवाद, गार्गी–याज्ञवल्क्य संवाद,

याज्ञवल्क्य जनक संवाद, छांदोग्य उपनिषद् में प्रजापति से इन्द्र तथा विरोचन का संवाद, जानश्रुति रैक्व संवाद, उषस्तिका आख्यान, आरुणि–श्वेतकेतु संवाद, नारदसनत्कुमार संवाद, कठोपनिषद् का यम नचिकेता संवाद, तैत्तिरीय उपनिषद् का भृगु आरुणि संवाद, प्रश्नोपनिषद् के ऋषि पिप्पलाद से सुकेशा, सत्यकाम, सौर्यायणि, कौसल्य, भार्गव और कबन्धी का संवाद आदि उल्लेखनीय हैं।

नारद सनत्कुमार संवाद में मूल तत्त्व को समझाने के लिए नाम से प्रारंभ होते हैं कि नाम ब्रह्म है और फिर क्रमशः वाक्, मन, संकल्प, चित्त, ध्यान, विज्ञान, बल, अन्न, जल, तेज, आकाश, स्मरण, आशा, प्राण, विज्ञान, मति, श्रद्धा, निष्ठा, कृति, सुख से होते हुए व्यापकतम ''भूमा'' पर पहुंचते हैं।[12] फिर प्रजापति के समक्ष इन्द्र और विरोचन, दोनों ने आत्मतत्त्व की जिज्ञासा की। इसमें प्रतिबिम्ब पुरुष से प्रारंभ कर स्वप्न पुरुष तथा सुषुप्त पुरुष के बाद आकाश संज्ञक ब्रह्म का उपदेश दिया गया।[13] आरुणि–श्वेतकेतु संवाद में आरुणि अपने जिज्ञासु पुत्र को विभिन्न दृष्टांतों, उपमाओं द्वारा तत्त्व से अवगत करवाते हैं।[14] गार्ग्य–अजातशत्रुसंवाद में गार्ग्य आदित्य रूपी प्राकृतिक शक्ति से प्रारंभ कर क्रमशः चन्द्र, विद्युत्, आकाश, वायु, अग्नि, जल, आदर्श (प्रतिबिम्ब), प्राण, दिक्, छाया और देह के कथन के द्वारा ब्रह्म कथन करते हैं। परन्तु अजातशत्रु प्रत्येक कथन का सतर्क प्रत्याख्यान करते हैं तथा अन्त में विज्ञानात्मा का उपदेश करते हैं और फिर मकड़ी और अग्नि स्फुल्लिंग के दृष्टांत द्वारा समझाते हैं।[15] जनक याज्ञवल्क्य संवाद में जनक विभिन्न ऋषियों द्वारा बताये गए वाक् ब्रह्म, प्राण ब्रह्म, चक्षुब्रह्म, मनो ब्रह्म तथा हृदय ब्रह्म का उल्लेख करते हैं। याज्ञवल्क्य प्रत्येक कथन की व्याख्या सहित समर्थन करते हैं। फिर क्रमशः पांच प्रकार की ज्योतियों का कथन करते हैं। आदित्य, चन्द्र, अग्नि, वाक् तथा आत्म। आत्मा को अनन्तज्योति के रूप में कथन किया जाता है। पुनः आत्मस्वरूप का वर्णन किया जाता है।[16]

तैत्तिरीय उपनिषद् में संकलित भृगु – वरुण संवाद इनमें से सबसे स्पष्ट है। भृगु आत्म मंथन की सहायता से (स तपो अतप्यत स तपस्तप्त्वा) से क्रमशः स्थूलतम अन्न को ब्रह्म जानता है, फिर प्राण को, मन को, विज्ञान को और अन्त में आनन्द को। ''आनन्दाख्य'' ब्रह्म उसके ज्ञान तप की चरम उपलब्धि है। प्रारंभ में, भृगु के उपसन्न होकर पूछने पर वरुण ऋषि एक संकेत सूत्र देते हैं कि ''ब्रह्म वह है जिसकी कारणता से ये समस्त प्राणी उद्भूत होते हैं। ये उद्भूत प्राणी जिससे जीवित रहते हैं। अन्त में ये प्राणी जिसमें प्रलीन हो जाते हैं। वही ब्रह्म है। उसे ही जानो।'' इसी संकेत सूत्र से भृगु उपर्युक्त तत्त्व को क्रमशः जान पाते हैं। इस क्रमिक विकास को समस्त विश्व के दर्शन के क्रमिक विकास का सांकेतिक कथन समझा जा सकता है। इसमें पिण्ड के माध्यम से ब्रह्माण्ड को समझा गया है। इससे ही आत्मा का ब्रह्म होना तथा ब्रह्म का आत्मा होना बोधव्य होता है।[17]

यद्यपि इतना तो बोधव्य होता है कि उपनिषदीय दार्शनिक ऐसे तत्त्व का अभिकथन करते हैं, जो सबके मूल में है, जो सबसे व्यापक है – वह ब्रह्म है। तथापि वे दार्शनिक, जिस किसी प्रत्यय का वर्णन या विश्लेषण करना प्रारंभ करते हैं, उसे भी ब्रह्म कहते हैं। साथ ही बार–बार संकेत करते हैं कि वह गुणातीत है, निर्गुण है, उस पर किसी प्रकार का गुणारोपण नहीं किया जा सकता। मानव बुद्धि की जिज्ञासा वृत्ति जानना तो चाहती ही है। किन्तु उसे ''तज्जलान'' जैसा सूत्र तब तक समझ में नहीं आएगा – जब तक कि वह इसे मूर्तरूप में न समझ ले। उस ब्रह्म में किसी भी गुण का आरोपण नहीं किया जा सकता। इसे यदि पाश्चात्य दार्शनिक स्पीनोजा के शब्दों में कहेंगे तो कहा जाएगा – म्अमतल कमजमतउपदंजपवद पे दमहंजपवद फिर जिस तरह गुणत्वारोपण से स्वरूप के खण्डित होने की आशंका है उसी प्रकार गुणत्व निषेध का भी परिणाम इसी तरह का अनर्थकारी ही होगा। जैसा कि पाश्चात्य प्रत्ययवादी दार्शनिक हीगेल की उक्ति है – म्अमतल दमहंजपवद पे कममतउपदंजपवदण इस सगुणत्व–निर्गुणत्व के ऊहापोह में ''ब्रह्म की अवधारणा'' दुरुह से दुरुहतर हो गई है।

''किसी वस्तु का भावरूप में होना'' सामान्य बुद्धि में सगुणरूप में ही समझ में आता है। उसमें कोई न कोई गुण तो होगा। परन्तु ''उसमें किस गुण विशेष को समझा जाए'' – यह भी वदतोव्याघात से उत्पन्न समस्या है। गुण तो परिवर्तनशील है तथा गुण का भी कारण, उपनिषदीय सिद्धान्त के अनुसार, उसी मूल तत्त्व ब्रह्म का कार्य ही है।

ये सारे ऊहापोह, वस्तुतः इसलिए है कि ''ब्रह्म'' को एक ज्ञेय वस्तु माना गया है। किन्तु उपनिषद् तो ''ज्ञेय और ज्ञाता'' को एक ही कहती है – ''विज्ञाता को कौन देखेगा।'' एक ही वस्तु, चाहे वह चैतन्य ही क्यों न हो, एक ही कार्यकाल में – ज्ञान और ज्ञेय, दोनों नहीं हो सकता। तो क्या ''ब्रह्म'' को शब्दातीत मान लिया जाए? ऐसा मान लेने पर उपनिषद् वाङ्मय का क्या प्रयोजन रह जाएगा जिससे वह अक्षर ''ब्रह्म'' वर्णित होता है?

आज तक के वैचारिक दार्शनिक विकास का यही प्रयोजन देखा गया है कि ''भाषिक संरचना'' से दुरुहतर विषयों को भी उजागर करने का प्रयास भर किया गया है। भाषा का प्रयोजन या भारतीय दर्शन की शब्दावली में कहें तो ''शब्द'' का प्रयोजन इंगित करना भर ही है। जब भी किसी वस्तु या भाव का कथन किया जाता है तो वस्तु या भाव उपस्थित नहीं हो जाता। बल्कि उससे उठने वाले इतर भावों का व्यावर्तन भर संभव है।

फिर, भाषा या शब्द की एक और समस्या, इन दिनों उभरी है कि सरलतम प्रत्ययों की अनुभूति तो प्रायः संभव है किन्तु उसका कथन संभव ही नहीं है। इसे पारिभाषिक शब्दावली में इन्द्रिय प्रदत्त कहा गया है। इसका सबसे बड़ा कारण तो यह दिया जाता है कि कथन का प्रयोजन, वक्ता की अनुभूति से प्रारंभ हो श्रोता के ज्ञानात्मक संवेदन तक, पूरा होता है। अर्थावबोध के परिप्रेक्ष्य में, कुछ दिनों पूर्व वैज्ञानिक पद्धति जोरों पर थी, जिसके अनुसार अवबोध के लिए प्रत्ययोक्त वस्तु से साक्षात्कार करवा दिया जाए। किन्तु यह पद्धति व्यक्ति की जैविक व्याप्ति में ही पूरी तरह नहीं समा सकती है। इसकी इस अतिव्याप्ति के कारण यह पद्धति चिर–स्थायी नहीं हो सकी।

अब, चूंकि पद्धतियां प्रयोग सापेक्ष और निष्वर्ष–सापेक्ष हैं, इसलिए, वे बनती और टूटती रहती हैं और इसे सत्य और असत्य के बजाय उपयुक्त और अनुपयुक्त कहा जाता है।

उस अवधारणा को, (जिसे ''अमूर्त'' की श्रेणी में रखकर, दुर्ग्राह्य से अग्राह्य की कोटि में रख दिया गया हो) समझने के लिए सर्वप्रथम उसकी अमूर्तता को खण्डित करना आवश्यक होता है। ब्रह्म पर्यायों की विवेचना के माध्यम से ब्रह्म की अवधारणा को अमूर्तत्व को तोड़ कर उसे मूर्त धारणा बनाने का प्रयास किया जा सकता है।

ब्रह्म एक अवधारणा ही है जो कि अनुभव–योग्य तो है किन्तु ऐन्द्रिक–साक्षात्कार योग्य नहीं कहा जा सकता। किन्तु उपर्युक्त प्रश्नों का समेकित स्वरूप और उसके उत्तरों का समेकित स्वरूप – इस तथ्य निर्दिष्ट करता है कि ब्रह्मावगति के लिए, ब्रह्म के पर्यायों के विभिन्न संदर्भों में हुए उल्लेखों का अध्ययन करें। ''अमूर्त'' स्वरूप में प्रसिद्ध ब्रह्म को ''मूर्त'' रूप में समझने का एक प्रयास है – ब्रह्म – पर्यायों का अध्ययन।

अब ''पर्याय'' को समझने का प्रयत्न किया जाता है। ''पर्याय'' शब्द की निष्पत्ति इस प्रकार बतायी जाती है – परि इन् गतौ घञ् अर्थात् सम्यक् रूप से (क्रमिक विकास) इसे ''सम्पर्क विशेष'' के रूप में भी समझा जा सकता है। दो व्यक्तियों, वस्तुओं का वह पारस्परिक सम्बंध है जो दोनों के एक ही कुल में उत्पन्न होने के कारण होता है।

पर्याय के इस अर्थ निरूपण के पश्चात् इनके प्रतिवेदन पर भी विचार किया जाना आवश्यक है।

प्रमुख उपनिषदों का तात्पर्य उन एकादश उपनिषदों से लिया गया है जिस शांकर भाष्य उपलब्ध है। इन सभी उपनिषदों में, जिसे भी ''अमुक ब्रह्म है'' की तरह कहा गया है, उन्हें ब्रह्म पर्याय के रूप में स्वीकृत कर लिया गया है। ये सभी ब्रह्म–पर्याय, के अर्थ समेकित रूप से जिस भी कथन का निर्माण कर पाते हैं – उसे ब्रह्म स्वरूप के कथन का एक प्रकार माना जा सकता है।

टिप्पणियां एवं संदर्भ

1. ''कस्मिन्नु भगवो विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवति।'' मु.उप. 1.1. 3
2. येन श्रुतं श्रुतं भवत्यमतं मतमविज्ञातं विज्ञातमिति। कथं नु भगवः स आदेशो भवतीति। छां.उप. 6.1.2, 3
3. किं कारण ब्रह्म कुतः स्म जाता जीवाम केन क्व च संप्रतिष्ठाः।
4. अधिष्ठाताः केन सुखतरेषु वर्तामहे ब्रह्म विदो व्यवस्थाम्। श्वे. उप. 1.1
5. विज्ञातामरे केन विजानीयात्। बृह.उप. 2.4.14
6. यत्रैष एतत्सुषुप्तो अभूद्य एष विज्ञानमयः पुरुषः क्वैष तदाभूत्कुत एतदागात्। बृह.उप. 2.1.16
7. अस्य लोकस्य का गति। छां.उप. 1.9.1
8. क्वासौ पुरुष इति। प्र.उप. 5.1
9. कस्मात्तानि न क्षीयन्ते अद्यमानानि। बृह.उप. 1.5.1
10. को नु आत्मा किं. ब्रह्मेति। छां.उप. 5.11.1
11. अधीहि भगवो ब्रह्मेति। तैत्ति.उप. 3.1.1
12. बृह.उप. 4.5.1, छां.उप. 2.24.1
13. छां.उप. 7.1.26
14. *वही,* 8.7.14
15. *वही,* षष्ठ अध्याय
16. बृह.उप. 2.1
17. *वही,* 4.1
18. तैत्ति.उप. 3 अध्याय